ठंडा लोहा

तथा

भारती की अन्य कविताएं

ठण्डा लोहा

तथा अन्य कविताएँ

धर्मवीर भारती

१९५२.

साहित्य भवन लिमिटेड

इलाहाबाद

प्रथम संस्करण
१९५२
मूल्य ३)

राजनारायण अवस्थी
द्वारा
हिन्दी साहित्य प्रेस
इलाहाबाद में
मुद्रित :
साहित्य भवन लिमिटेड
द्वारा
प्रकाशित

ठण्डा लोहा

तथा भारती की अन्य कविताएँ

इक लोहा
पूजा में राखत
इक घर बधिक परो,
पारस गुन-अवगुन
नहिं चितवत
कंचन करत खरो—
मोरे अवगुन चित न धरो !

—सूर

पता नहीं

बंधे हुए हाथ

समर्पण ग्रहण करने के लिये

उठ पायें, न उठ पायें

यही सोचकर

इस कृति को असमर्पिता ही

रहने दिया जाता है !

इन कविताओं के विषय में मुझे विशेष कुछ नहीं कहना है। मैं कविताएं बहुत कम लिख पाता हूँ और अक्सर कुछ कविताएं लिख लेने के बाद मौन का एक बहुत लम्बा व्यवधान बीच में आजाता है जिससे अगले क्रम की कविताएं और पिछले क्रम की कविताओं का तारतम्य टूटा टूटा सा लगने लगता है। इस संग्रह में दी गई कविताएं मेरे पिछले ६ वर्षों की रचनाओं में से चुनी गई हैं और चूंकि यह समय अधिक मानसिक उथल-पुथल का रहा अतः इन कविताओं में स्तर, भाव-भूमि, शिल्प और टोन की काफ़ी विविधता मिलेगी। एकसूत्रता केवल इतनी है कि सभी मेरी कविताएं हैं, मेरे विकास और परिपक्वता के साथ उनके स्वर बदलते गये हैं पर आप ज़रा ध्यान से देखेंगे तो सभी में मेरी आवाज़ पहिचानी सी लगेगी।

मैं अपने को स्वतः में सम्पूर्ण, निस्संग, निरपेक्ष, सत्य नहीं मानता। मेरी परिस्थितियाँ, मेरे जीवन में आने और आकर चले जाने वाले लोग, मेरा समाज, मेरा वर्ग, मेरे संघर्ष, मेरी समकालीन राजनीति और समकालीन साहित्यिक प्रवृत्तियाँ, इन सभी का मेरे और मेरी कविता के रूप-गठन और विकास में प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष भाग रहा है। मैं और मेरी कविता तो चाक पर चढ़ी हुई गीली मिट्टी हैं जिसमें से कोई 'अनजान अंगुलियाँ' धीरे धीरे मनचाहा रूप निकाल रही हैं।

इसी सतत निर्माण और विकास को ध्यान में रख कर मैंने कहा है कि 'ये गलियाँ थीं जिनसे होकर मैं गुज़र चुका।' यद्यपि आज मेरा मन उस भूमि पर है जो "कवि और अनजान पगध्वनियाँ" या "कलाकार से" या "फूल, मोमबत्तियाँ, सपने" की भावभूमि है—पर जिन गलियों से मैं गुज़र चुका हूँ उनका महत्व क़तई कम नहीं होता क्योंकि उन्हीं से गुज़र कर मैं यहाँ तक पहुँचा हूँ। कैशोरा-वस्था के प्रणय, रूपासक्ति और आकुल निराशा से एक पावन, आत्मसमर्पणमयी वैष्णव-भावना और उसके माध्यम से अपने मन के

अहम् का शमन कर अपने से बाहर की व्यापक सच्चाई को हृदयंगम कर, संकीर्णताओं और कट्टरता से ऊपर एक जनवादी भावभूमि की खोज—मेरी इस छन्द-यात्रा के यही प्रमुख मोड़ रहे हैं।

सब से पिछला मोड़ 'कवि और अनजान पगध्वनियाँ' में स्पष्ट उभर आया है। इस मोड़ का प्रारम्भ 'ठण्डा लोहा' से हुआ था। वही इस संग्रह की प्रथम कविता है और उसी पर संग्रह का भी नामकरण हुआ है। चयन के क्रम में कई कारणों से रचनाकाल का आधार नहीं रक्खा जा सका। इधर की नवीनतम कविताएं इस संग्रह में नहीं दी गई क्योंकि वे एक नये विकास-क्रम का सूत्रपात करती हैं।

मेरे जिन कवि-मित्रों या आलोचक-बन्धुओं ने समय समय पर मेरी कविताओं का विश्लेषण कर उनके विषय में बहुमूल्य सुझाव दिये हैं, उनकी न्यूनताओं और दोषों की ओर मेरा ध्यान आकर्षित किया है उनका मैं हृदय से आभारी हूँ। जिन्होंने किसी भी दलगत अथवा व्यक्तिगत पूर्वधारणा के कारण बिना उनका सम्यक् विश्लेषण किये हुए ही उन पर निर्णय दिये हैं उनका भी मैं आभारी हूँ क्योंकि ऐसे निर्णयों का भी अपना एक अलग ही रस होता है। प्रार्थना करता हूँ कि वे ऐसी पूर्वधारणाओं से मुक्त हों ताकि उनसे मुझे अधिक ठोस और उपयोगी सुझाव मिल सकें जो मेरे विकास और परिमार्जन में सचमुच सहायक सिद्ध हों।

मैं अपना पथ बना रहा हूँ। ज़िन्दगी से अलग रह कर नहीं, ज़िन्दगी के संघर्षों को झेलता हुआ, उसके दुख-दर्द में एक गम्भीर अर्थ ढूँढ़ता हुआ और उस अर्थ के सहारे अपने को जनव्यापी सच्चाई के प्रति अर्पित करने का प्रयास करते हुए। कवि का जीवन, कवि की वाणी, अर्पित जीवन और अर्पित वाणी होते हैं। आशीर्वाद चाहता हूँ कि धीरे धीरे मैं और मेरी कलम एक निर्मल और सशक्त माध्यम बन सकें जिससे विराट जीवन, उसका सुख-दुख, उसकी प्रगति और उसका अर्थ व्यक्त हो सके। यही मेरी कविता की सार्थकता होगी।

शिवरात्रि
२३. फरवरी १९५२.

धर्मवीर भारती

ठण्डा लोहा

ठण्डा लोहा ! ठण्डा लोहा ! ठण्डा लोहा !
मेरी दुखती हुई रगों पर ठण्डा लोहा !

मेरी स्वप्न भरी पलकों पर
मेरे गीत भरे होठों पर
मेरी दर्द भरी आत्मा पर
स्वप्न नहीं अब
गीत नहीं अब
दर्द नहीं अब—

एक पर्त ठण्डे लोहे की !
मैं जम कर लोहा बन जाऊँ—
हार मान लूँ—
यही शर्त ठण्डे लोहे की !
ओ मेरी आत्मा की संगिनि !
तुम्हें समर्पित मेरी सांस सांस थी लेकिन
मेरी सांसों में यम के तीखे नेजे सा
कौन अड़ा है ?
ठण्डा लोहा !
मेरे और तुम्हारे सारे भोले निश्छल विश्वासों को
आज कुचलने कौन खड़ा है ?
ठण्डा लोहा !
फूलों से, सपनों से, आँसू और प्यार से
कौन बड़ा है ?
ठण्डा लोहा !

ओ मेरी आत्मा की संगिनि !

अगर ज़िन्दगी की कारा में,

कभी छटपटा कर मुझको आवाज़ लगाओ

और न कोई उत्तर पाओ

यही समझना कोई इसको धीरे धीरे निगल चुका है,

इस बस्ती में कोई दीप जलाने वाला नहीं बचा है,

सूरज और सितारे ठण्डे

राहें सूनी

विवश हवाएं

शीश झुकाए

खड़ी मौन हैं,

बचा कौन है ?

ठण्डा लोहा ! ठण्डा लोहा ! ठण्डा लोहा !

तुम्हारे चरण

ये शरद के चाँद से उजले धुले से पाँव,
मेरी गोद में।
ये लहर पर नाचते ताज़े कमल की छाँव,
मेरी गोद में।
दो बड़े मासूम बादल, देवताओं से लगाते दाँव,
मेरी गोद में।

रसमसाती धूप का ढलता पहर,
ये हवाएँ शाम की, झुक झूम कर बरसा गईं
रोशनी के फूल हरसिंगार से,
प्यार घायल साँप सा लेता लहर,
अर्चना की धूप सी तुम गोद में लहरा गईं,
ज्यों झरे केसर तितलियों के परों की मार से,
सोनजूही की पंखुरियों से गुंथे, ये दो मदन के बान,
मेरी गोद में।
हो गए बेहोश दो नाज़ुक, मृदुल तूफ़ान,
मेरी गोद में।

ज्यों प्रणय की लोरियों की बाँह में,
झिलमिला कर औ' जला कर तन शमाएँ दो,
अब शलभ की गोद में आराम से सोई हुई।
या फरिश्तों के परों की छाँह में,
दुबकी हुई, सहमी हुई, हों पूर्णिमाएँ दो,
देवताओं के नयन के अश्रु से धोई हुई
चुम्बनों की पाखुरी के दो जवान गुलाब,
मेरी गोद में!
सात रंगों की महावर से रचे महताब,
मेरी गोद में!

ये बड़े सुकुमार, इनसे प्यार क्या?
ये महज़ आराधना के वास्ते,
जिस तरह भटकी सुबह को रास्ते
हरदम बताए हैं, रुपहरे शुक्र के नभ-फूल ने,
ये चरण मुझको न दें अपनी दिशाएँ भूलने!
ये खण्डहरों में सिसकते, स्वर्ग के दो गान, मेरी गोद में!
रश्मि पंखों पर अभी उतरे हुए वरदान, मेरी गोद में!

प्रार्थना की कड़ी

प्रार्थना की एक अनदेखी कड़ी
बाँध देती है
तुम्हारा मन, हमारा मन;
फिर किसी अनजान आशीर्वाद में—
डूब कर
मिलती मुझे राहत बड़ी।
प्रात सद्यः स्नात
कन्धों पर बिखेरे केश
आँसुओं में ज्यों
धुला वैराग्य का सन्देश
चूमती रह रह
बदन को अर्चना की धूप
यह सरल निष्काम
पूजा सा तुम्हारा रूप
जी सकूँगा सौ जनम अंधियारियों में, यदि मुझे
मिलती रहे
काले तमस की छाँह में
ज्योति की यह एक अति पावन घड़ी।
प्रार्थना की एक अनदेखी कड़ी।

चरण वे जो
लक्ष्य तक चलने नहीं पाये
वे समर्पण जो न
होठों तक कभी आये
कामनाएं वे नहीं
जो हो सकीं पूरी—
घुटन, अकुलाहट,
विवशता, दर्द, मजबूरी—
जन्म जन्मों की अधूरी साधना, पूर्ण होती है
किसी मधु-देवता
की बाँह में !
ज़िन्दगी में जो सदा झूठी पड़ी—
प्रार्थना की एक अनदेखी कड़ी !

उदास तुम

तुम कितनी सुन्दर लगती हो
जब तुम हो जाती हो उदास !
ज्यों किसी गुलाबी दुनिया में, सूने खण्डहर के आसपास
मदभरी चाँदनी जगती हो !

मुंह पर ढँक लेती हो आँचल
ज्यों डूब रहे रवि पर बादल,

या दिन भर उड़ कर थकी किरन,
सो जाती हो पाँखें समेट, आँचल में अलस उदासी बन !
दो भूले भटके साध्य-विहग, पुतली में कर लेते निवास !

तुम कितनी सुन्दर लगती हो
जब तुम हो जाती हो उदास !

खारे आँसू से धुले गाल
रूखे हल्के अधखुले बाल,
बालों में अजब सुनहरापन,
झरतीं ज्यों रेशम की किरनें, संझा की बदरी से छन छन !
मिसरी के होठों पर सूखी किन अरमानों की विकल प्यास !

तुम कितनी सुन्दर लगती हो
जब तुम हो जाती हो उदास !

भँवरों की पाँतें उतर उतर
कानों में झुक कर गुनगुन कर
हैं पूछ रहीं–"क्या बात सखी ?
उन्मन पलकों की कोरों में क्यों दबी ढँकी बरसात सखी ?
चम्पई वक्ष को छूकर क्यों उड़ जाती केसर की उसाँस ?"
तुम कितनी सुन्दर लगती हो
ज्यों किसी गुलाबी दुनिया में सूने खण्डहर के आसपास
मदभरी चाँदनी जगती हो !

उदास मैं

उन्मन मन पर एक अजब सा अलस उदासी भार !
मुंदती पलकों के कूलों पर जल-बूंदों का शोर
मन में उठती गुपचुप पुरवैया की मृदुल हिलोर
कि स्मृतियाँ होतीं चकनाचूर
हृदय से टकरा कर भरपूर
उमड़ घुमड़ कर घिर घिर आता है बरसाती प्यार !
उन्मन मन पर एक अजब सा अलस उदासी भार !
नील धुएँ से ढँक जाती उज्ज्वल पलकों की भोर
स्मृतियों के सौरभ से लद कर चलती श्वास झकोर
कि रुक जाता धड़कन का तार
कि झुक जाती सपनों की डार
छितरा जाता कुसुम हृदय का ज्यों गुलाब बीमार
उन्मन मन पर एक अजब सा अलस उदासी भार !
स्वर्ण-धूल स्मृतियों की नस की रस-बूंदों में आज
गुंथी हुई है ऐसे जैसे प्रथम प्रणय में लाज,
बोल में अजब दरद के स्वर,
कि जैसे मरकत शय्या पर
पड़ी हुई हो घायल कोई स्वर्ण-किरन सुकुमार !
उन्मन मन पर एक अजब सा अलस उदासी भार !

डोले का गीत

अगर डोला कभी इस राह से गुज़रे कुबेला
यहाँ अम्बवा तरे रुक
एक पल विश्राम लेना
मिलो जब गाँव भर से, बात कहना, बात सुनना
भूल कर मेरा
न हर्गिज़ नाम लेना,
अगर कोई सखी कुछ ज़िक्र मेरा छेड़ बैठे
हँसी में टाल देना बात
आँसू थाम लेना !

शाम बीते, दूर जब भटकी हुई गायें रंभायें
नींद में खो जाय जब
खामोश डाली आम की
तड़पती पगडण्डियों से पूछना मेरा पता—
तुमको बतायेंगी कथा मेरी,
व्यथा हर शाम की;
पर न अपना मन दुखाना, मोह क्या उससे
कि जिसका नेह टूटा, गेह छूटा
हर नगर परदेश है जिसके लिये अब
हर डगरिया राम की !

भोर फूटे, भाभियाँ जब गोद भर आशीश दे दें
ले विदा अमराइयों से
चल पड़े डोला हुमच कर
है क़सम तुमको, तुम्हारे कोंपलों से नैन में आँसू न आयें
राह में पाकड़ तले
सुनसान पाकर
प्रीत ही सब कुछ नहीं है, लोक की मरजाद है सब से बड़ी
बोलना रुँधते गले से—
"ले चलो ! जल्दी चलो ! पी के नगर !"

पी मिलें जब
फूल सी अँगुली दबा कर चुटकियाँ लें और पूछें—
"क्यों ?
कहो कैसी रही जी, यह सफ़र की रात ?"
हँस कर टाल जाना बात !
हँस कर टाल जाना बात, आँसू थाम लेना !
यहाँ अम्बवा तरे रुक एक पल विश्राम लेना !
अगर डोला कभी इस राह से गुज़रे !

फागुन की शाम

घाट के रस्ते
उस बंसवट से
इक पीली सी चिड़िया
उसका कुछ अच्छा सा नाम है !

मुझे पुकारे !
ताना मारे,
भर आयें आँखड़ियाँ !
उन्मन, ये फागुन की शाम है !

घाट की सीढ़ी तोड़ फोड़ कर बन-तुलसा उग आई
झुरमुट से छन जल पर पड़ती सूरज की परछाईं
तोतापंखी किरनों में हिलती बाँसों की टहनी
यहीं बैठ कहती थी तुमसे सब कहनी अनकहनी

आज खा गया बछड़ा मा की रामायन की पोथी !
अच्छा अब जाने दो मुझको घर में कितना काम है !

इस सीढ़ी पर, यहीं जहाँ पर लगी हुई है काई
फिसल पड़ी थी मैं, फिर बाहों में कितना शर्माई !
यहीं न तुमने उस दिन तोड़ दिया था मेरा कंगन !
यहाँ न आऊँगी अब, जाने क्या करने लगता मन !

लेकिन तब तो कभी न हममें तुममें पल भर बनती !
तुम कहते थे जिसे छाँह है, मैं कहती थी घाम है !

अब तो नींद निगोड़ी सपनों सपनों भटकी डोले
कभी कभी तो बड़े सकारे कोयल ऐसे बोले
ज्यों सोते में किसी बिसैली नागन ने हो काटा
मेरे संग संग अक्सर चौंक चौंक उठता सन्नाटा

पर फिर भी कुछ कभी न जाहिर करती हूँ इस डर से
कहीं न कोई कह दे कुछ, ये ऋतु इतनी बदनाम है !

ये फागुन की शाम है !

बादलों की पाँत

यह बादलों की पाँत भी, दुश्मन हुई जाती मुझे !

क्या न था काफ़ी
बनाने को मुझे पागल
तुम्हारे गर्म होठों पर
सुलगता मूंगिया बादल

तुम्हारे स्पर्श के ही
ज़ुल्म से संयम न टिक पाता
किसी गुमनाम टोने में
बँधा मैं और अकुलाता

कि इतने में किसी नादान ने,
यह भेज दी बरसात भी !
दुश्मन हुई जाती मुझे
यह बादलों की पाँत भी !

उमंगों की लहर पर
डोलता सा ज़ाफ़रानी तन
बिजलियों के अछूते फूल
के उभरे हुए सावन

ज़हर, जो गेसुओं की
पर्त में सौ पेंच खाता हो
क़हर उस वक़्त कोई
रुमझुमा कर और ढाता हो !

धरा का विष सहूँ मैं
और झेलूं स्वर्ग का आघात भी !
दुश्मन हुई जाती मुझे
यह बादलों की पाँत भी !

तुम्हारी साँस में बारीक
चुम्बन की लहर छाई
हवाओं में पिरोती
गुदगुदी कम्बख़्त पुरवाई

उसी कमज़ोर क्षण में
आ घिरे ये फूल के बादल
उलझते आ रहे जैसे
परस्पर नागिनों के दल !

मुझे इक साथ डँस लेते
बदलियों के हज़ारों फन

हुई जाती मुझे दुश्मन
मुझे दुश्मन हुई जाती

यह बादलों की पाँत भी
दुश्मन हुई जाती मुझे !

बेला महका

फिर,

बहुत दिनों के बाद खिला बेला मेरा आँगन महका !

फिर पाखुरियों, कमसिन परियों

वाली अल्हड़ तरुणाई,

पकड़ किरन की डोर, गुलाबों के हिंडोर पर लहराई,

जैसे अनचित्ते चुम्बन से

लचक गई हो अँगड़ाई,

डोल रहा साँसों में

कोई इन्द्रधनुष बहका बहका !

बहुत दिनों के बाद खिला बेला, मेरा आँगन महका !

हाट बाट में, नगर डगर में

भूले भटके भरमाये,

फूलों के रूठे बादल फिर बाहों में वापस आये

साँस साँस में उलझी कोई

नागन सौ सौ बल खाए

ज्यों कोई संगीत पास

आ आ कर दूर चला जाये

बहुत दिनों के बाद खिला बेला, मेरा मन लहराये !

नील गगन में उड़ते घन में
भीग गया हो ज्यों खंजन
आज न बस में, विह्वल रस में, कुछ ऐसा बेक़ाबू मन,
क्या जादू कर गया नया
किस शहज़ादी का भोलापन
किसी फरिश्ते ने फिर
मेरे दर पर आज दिया फेरा
बहुत दिनों के बाद खिला बेला महका आँगन मेरा !
आज हवाओं नाचो गाओ
बाँध सितारों के नूपुर,
चाँद ज़रा घूँघट सरकाओ, लगा न देना कहीं नज़र !
इस दुनिया में आज कौन
मुझसे बढ़ कर है किस्मतवर
फूलों राह न रोको ! तुम
क्या जानो जी कितने दिन पर
हरी बाँसुरी को आई है मोहन के होठों की याद !
बहुत दिनों के बाद,
फिर, बहुत दिनों के बाद खिला बेला मेरा आँगन महका !

फ़ीरोज़ी होंठ

इन फ़ीरोज़ी होंठों पर
बरबाद मेरी ज़िन्दगी
इन फ़ीरोज़ी होंठों पर !
गुलाबी पाँखुरी पर एक हल्की सुरमई आभा
कि ज्यों करवट बदल लेती कभी बरसात की दुपहर
इन फ़ीरोज़ी होंठों पर !
तुम्हारे स्पर्श की बादल घुली कचनार नरमाई
तुम्हारे वक्ष की जादूभरी मदहोश गरमाई
तुम्हारी चितवनों में नरगिसों की पाँत शरमाई
किसी भी मोल पर मैं आज अपने को लुटा सकता
सिखाने को कहा
मुझसे प्रणय के देवताओं ने
तुम्हें आदिम गुनाहों का अजब सा इन्द्रधनुषी स्वाद !
मेरी ज़िन्दगी बरबाद !
अन्धेरी रात में खिलते हुए बेले सरीखा मन
मृनालों की मुलायम बाँह ने सीखी नहीं उलझन
सुहागन लाज में लिपटा शरद की धूप जैसा तन
पँखुरियों पर भँवर के गीत सा मन टूटता जाता
मुझे तो वासना का
विष हमेशा बन गया अमृत
बशर्तें वासना भी हो तुम्हारे रूप से आबाद !
मेरी ज़िन्दगी बरबाद !
गुनाहों से कभी मैली हुई बेदाग़ तरुनाई—
सितारों की जलन से बादलों पर आँच कब आई
न चन्दा को कभी व्यापी अमा की घोर कजराई
बड़ा मासूम होता है गुनाहों का समर्पन भी
हमेशा आदमी
मजबूर होकर लौट आता है
जहाँ हर मुक्ति के, हर त्याग के, हर साधना के बाद !
मेरी ज़िन्दगी बरबाद !

बसन्ती दिन

यह छुईमुई सा सकुचाना
भयभीत मृगी सा घबराना
यह नहीं लाज की बेला प्रिय,
कुंजों में छिप छिप छेड़ रहा दोशीज़ा कलियों को फागुन !
लतरों के ताज़े फूलों पर,
भँवरों की ताज़ी भूलों पर, बुनता है कोई प्रेम-सपन !
फूलों के कन्धों पर सर धर
सो रहीं तितलियाँ अलसा कर,
कुछ चुपके से समझा जाता यह मस्त फ़िज़ाँ का सुनापन,
अम्बर से बरस रहे रिमझिम,
मनहरन निमन्त्रन, आलिंगन, मीठी मनुहारें, विष-चुम्बन !
यह नहीं लाज की बेला प्रिय,
कुंजों में छिप छिप छेड़ रहा, दोशीज़ा कलियों को फागुन !
गोधूली की आखिरी किरन
अम्बर की पुतली में रस बन, छिन में दिखती छिन में ओझल !
तारों की झिलमिल लाज प्रिये !
है खुल खुल जाती आज प्रिये !
नभ के उर पर कसता जाता,
किरनों की नरम मुलायम बाहों का अलसाया सा बन्धन !
यह नहीं लाज की बेला प्रिय,
कुंजों में छिप छिप छेड़ रहा दोशीज़ा कलियों को फागुन !
तारों के झुरमुट में छिपकर,
कुछ जादू टोना सा पढ़ कर, मनसिज ये तीर चलाता है;
वह तीर क्या कि जो चुभा नहीं !
अम्बर गंगा में नहा रहीं
सुरबालाओं का हंसों का सा दिल घायल हो जाता है,
फिर तुम कैसे सह पाओगी
यह फूल-तीर, यह नवयौवन, यह हल्का मदिर बसन्ती दिन ?
यह नहीं लाज की बेला प्रिय,
कुंजों में छिप छिप छेड़ रहा दोशीज़ा कलियों को फागुन !

गुनाह का गीत

अगर मैंने किसी के होठ के पाटल कभी चूमे
अगर मैंने किसी के नैन के बादल कभी चूमे

महज़ इससे किसी का प्यार, मुझको पाप कैसे हो?
महज़ इससे किसी का स्वर्ग मुझ पर शाप कैसे हो?

तुम्हारा मन अगर सींचूँ,
गुलाबी तन अगर सींचूँ, तरल मलयज झकोरों से।
तुम्हारा चित्र खींचूँ प्यास के रंगीन डोरों से

कली सा तन, किरन सा मन, शिथिल सतरंगिया आँचल
उसी में खिल पड़े यदि भूल से कुछ होठ के पाटल
किसी के होठ पर झुक जाँय कच्चे नैन के बादल

महज़ इससे किसी का प्यार मुझ पर पाप कैसे हो?
महज़ इससे किसी का स्वर्ग मुझ पर शाप कैसे हो?

किसी की गोद में सर धर
घटा घनघोर बिखरा कर, अगर विश्वास सो जाये

धड़कते वक्ष पर मेरा अगर व्यक्तित्व खो जाये?
न हो यह वासना तो ज़िन्दगी की माप कैसे हो?
किसी के रूप का सम्मान मुझ पर पाप कैसे हो?
नसों का रेशमी तूफ़ान मुझ पर शाप कैसे हो?

किसी की साँस में चुन दूँ
किसी के होठ पर बुन दूँ अगर अंगूर की पर्तें
प्रणय में निभ नहीं पातीं कभी इस तौर की शर्तें

यहाँ तो हर क़दम पर स्वर्ग की पगडंडियाँ घूमीं
अगर मैंने किसी की मदभरी अंगड़ाइयाँ चूमीं
अगर मैंने किसी की साँस की पुरवाइयाँ चूमीं

महज़ इससे किसी का प्यार मुझ पर पाप कैसे हो?
महज़ इससे किसी का स्वर्ग मुझ पर शाप कैसे हो?

कच्ची साँसों का इसरार

सुनो तुम्हारी कच्ची साँसें करती हैं इसरार,
ओ गंगा-जमुनी नय वाली,
अभी छाँह से डरने वाली,
अभी करो मत तुम रतनारी किरनों से सिंगार।

अभी अभी यौवन ने ली है अरसौहीं अँगड़ाई।
जैसे सावन की बूँदों से घायल हो पुरवाई,
अभी नज़र में लाज कसी है,
जैसे सागर की लहरों पर हो नमकीन ख़ुमार।
अभी करो मत तुम रतनारी किरनों से सिंगार।

अभी बहकना सीख न पाई है केसर की साँस।
अभी धड़क पाए हैं दिल में बस सोलह मधुमास।
अभी आँख में शाम बसी है,
अंग अंग में शैशव सपनों की टूटन सुकुमार।
अभी करो मत तुम रतनारी किरनों से सिंगार।

अभी शोख़ बचपन के पंखों में दुबका है रूप।
जैसे बादल की परतों में ढँकी सलोनी धूप।
धुँआ धुँआ सी उड़ती नज़रें,
ज्यों घिर आये मेघदूत वाले बादल कचनार।
अभी करो मत तुम रतनारी किरनों से सिंगार।

मुग्धा

यह पान फूल सा मृदुल बदन
बच्चों की ज़िद सा अल्हड़ मन
तुम अभी सुकोमल, बहुत सुकोमल अभी न सीखो प्यार !

कुंजों की छाया में झिलमिल
झरते हैं चाँदी के निर्झर
निर्झर से उठते बुदबुद पर
नाचा करतीं परियाँ हिलमिल
उन परियों से भी कहीं अधिक
हल्का फुल्का लहराता तन !
तुम अभी सुकोमल, बहुत सुकोमल, अभी न सीखो प्यार !

तुम जा सकतीं नभ पार अभी
लेकर बादल की मृदुल तरी
बिजुरी की नव चमचम चुनरी
से कर सकतीं सिंगार अभी
क्यों बाँध रहीं सीमाओं में
यह धूप सदृश खिलता यौवन ?
तुम अभी सुकोमल, बहुत सुकोमल, अभी न सीखो प्यार !

अब तक तो छाया है खुमार
रेशम की सलज निगाहों पर
हैं अब तक काँपे नहीं अधर
पाकर अधरों का मृदुल भार
सपनों की आदी ये पलकें
कैसे सह पायेंगी चुम्बन ?
तुम अभी सुकोमल, बहुत सुकोमल, अभी न सीखो प्यार !

यह पान फूल सा मृदुल बदन,
बच्चों की ज़िद सा अल्हड़ मन !

तुम

तुम्हारे रंग रतनारे नैन,
तुम्हारे मद मतवारे वैन,
तुम्हारे ये ज़हरीले बाल,
गाल पर लहराते बेचैन !

नैन में मंजुल शिशिर प्रभात
वक्ष-स्पन्दन में झंझावात
खुले ये काले काले केस
सघन घन अलकों में बरसात

सघन घन अलकों में बरसात
कंवल पर ज्यों भंवरों की पाँत
सुनहली सन्ध्या के चहुँ ओर
नसीली गीली काली रात

नसीली दांठ, लजीले सैन
भरे, ये अरुन गुलाबी नैन
कि जिनसे बेहिसाब अन्दाज़
छलकती है मस्ती दिन रैन

लुटातीं जो मस्ती मदहोश
उसे पी कलिकाएं बेहोश,
बचा कर नभ के प्यासे नैन
खोलती मलय लाज के कोष

गगन-घन बादल दल में प्रान
एक कोई रिश्ता अनजान
गूँजती एक अटूटी प्यास
प्यार की भूली सी पहचान

अगर सच पूछो मेरी प्रान !
व्यर्थ है स्वर्ग, नर्क अनुमान
तुम्हारी मुस्काहट में स्वर्ग
तुम्हारे आँसू में भगवान !

जागरण

तुम जगी सुबह या जगा तुम्हारी पलकों बीच विहान !

पुलकित पलकों की प्रिय पाँखुरियों पर
लो सहसा ढलक गई शबनमी नज़र
अंगड़ाई ली बह चले पवन,
गूँजे भंवरों के गान !

कजरारी पुतरी पर फैला काजर
या रात रात भर जगी रात थक कर,
सो गई सुबह इन अलसाई सी
पलकों पर अनजान !

फूलों की पलकों पर रवि का चुम्बन
है सुखा रहा शबनम के आँसू कन,
आओ पलकें चूम मिटा दूँ
आलस भरी थकान !

तुम जगी सुबह या जगा तुम्हारी पलकों बीच विहान !

पावस-गति

तुम चलीं प्राण जैसे धरती पर लहराये बरसात !

भौहों में इन्द्रधनुष उज्ज्वल
अलसित पलकों की छाया में घनघोर घटाबिजलीबादल !
नज़रों में ताज़े फूल खिले
गति में शत झंझावात चले
पलकों में हंसते दिवस चले, अलकों में उलझी रात !

साँसों में गीली पुरवाई
दिल की धड़कन में उभर रही ज्यों धीमे धीमे तरुणाई ?
पुतली में दो प्यासे मधुकर
अलकें ज्यों सरि में नील लहर
मुख की छवि जैसे निखर गया शबनम से धुल जलजात !

चन्दा के रथ का मृगछौना,
रुक गया बीच नभ में ज्यों कोई मार गया जादू टोना,
तुमने मुड़ कर ली अंगड़ाई
पूरब में ऊषा शरमाई
रतनारे नैनों में हँस कर छिप गया लजीला प्रात !

कोहरे भरी सुबह

हवाओं में हल्की बौछार
सुबह में अभी नींद का रंग
गुलाबी जादू डूबे अंग
गरम बाँहों में सोया प्यार !

तुम्हारा पूरा हो शृंगार
इसी से आखिर मैंने हार
—दिया जीवन का मोती फेंक
आज हम तन-तन, मन-मन एक

नशे में डूबी डूबी रात गई लो आने को है प्रात
स्वर्ग में बिछुड़े पंछी मिले गगन-गंगा के कूलों पर
कोहरा छाया फूलों पर !

बादलों में सूरज का कहीं
नहीं कतई कोई आभास
तितलियाँ ज्यों निज पाँखें खोल
फूल छूने का करें प्रयास,

—छू रही मेरे शीत कपोल
किसी की हल्की हल्की साँस
नये फूलों की शहज़ादी
नींद में बेसुध मेरे पास

सो गई अभी अभी आश्वस्त, जिन्दगी यूँ तो काफ़ी पस्त
मगर सारी कड़ुवाहट चीर
अजब से ये रहस्यमय प्यार
लौट आते हैं बारम्बार
तोड़ते मन के सभी कगार
छोड़ जाते सतरंगी छाप सभी फौलाद-ढले यन्त्रवत् उसूलों पर !
कोहरा छाया फूलों पर !

—एक—

ओस में भीगी हुई अमराइयों को चूमता
झूमता आता मलय का एक झोंका सर्द
काँपती-मन की मुँदी मासूम कलियाँ काँपती
और खुशबू सा बिखर जाता हृदय का दर्द।

—दो—

ईश्वर न करे तुम कभी ये दर्द सहो
दर्द, हाँ अगर चाहो तो इसे दर्द कहो
मगर ये और भी बेदर्द सजा है ऐ दोस्त !
कि हाड़ हाड़ चिटख जाय मगर दर्द न हो।

—तीन—

आज माथे पर, नज़र में बादलों को साध कर
रख दिये तुमने सरल संगीत से निर्मित अधर
आरती के दीपकों की झिलमिलाती छाँह में
बाँसुरी रक्खी हुई ज्यों भागवत के पृष्ठ पर

— चार —

फीकी फीकी शाम हवाओं में घुटती घुटती आवाज़ें
यूँ तो कोई बात नहीं पर फिर भी भारी भारी जी है,
माथे पर दुख का धुंधलापन, मन पर गहरी गहरी छाया
मुझको शायद मेरी आत्मा ने आवाज़ कहीं से दी है।

बोआई का गीत

(कोरस-नृत्य)

गोरी गोरी सोंधी धरती—कारे कारे बीज
बदरा पानी दे !

क्यारी क्यारी गूंज उठा संगीत
बोने वालो ! नई फसल में बोओगे क्या चीज़ !
बदरा पानी दे !

मैं बोऊँगा वीरबहूटी, इन्द्रधनुष सतरंग
नये सितारे, नई पीढ़ियाँ, नये धान का रंग

हम बोयेंगी हरी चुनरियाँ, कजरी, मेंहदी—
राखी के कुछ सूत और सावन की पहली तीज !
बदरा पानी दे !

एक पत्र

(आरम्भिक कृति)

गुंथा दिल की धड़कन में प्यार, प्यार के विषम हर्ष के बीच,
हृदय में टीस, टीस में कसक, कसक के पीत हर्ष के बीच,
ज़िन्दगी की बेहोशी पर मौत के शीत स्पर्श के बीच,
तुम्हारी पाती मिली अबोध, तुम्हारी पाती मिली अजान
तुम्हारी पाती मिली अजान, कि जैसे मृदु नवजीवनदान !

कि जैसे पानी की दो बूंद, धधकता भीषण रेगिस्तान
कि जैसे घिरी घटा के बीच, चपल बिजली की मृदु मुस्कान
कि जैसे कटु पतझर के बीच, खिली कोमल कोंपल नादान
तुम्हारी पाती पाई प्राण, तुम्हारी पाती आई प्राण
कि जैसे झोंके काँटों बीच कोई अल्हड़ कलिका नादान !

लिखा है तुमने भेजूं पत्र, मगर मेरे अक्षर अनजान,
फिसल जाते हैं मुझसे दूर, सहम चुप हो जाते अरमान
फड़क उठते हैं मेरे होठ, होठ में घुट रह जाते गान,
होठ मे घुट रह जाते गान, और मैं रह जाता हूँ मूक
और मैं रह जाता हूँ मूक, सिसक रह जाती हिय की हूक !

सुना है मैंने मधु के गीत सिखा देता है कवि को प्यार,
सुना है पढ़ दो आखर प्रेम कुशल बन जाता है संसार
मगर मेरे शब्दों पर आज तुम्हारे ही सपनों का भार
कि जो गति को कर देता मन्द, उलझ जाता है जैसे डोर
कि जैसे तट से टकरा टूट फूट जाता लहरों का शोर !

उमड़ते मेरे मन में भाव, कि जैसे नयनों में घनश्याम,
उमड़ती मेरे मन में टीस, और मैं लेता हूँ जी थाम,
कि जैसे किसी प्रश्न पर भूल लगा दे कोई पूर्ण विराम !
सत्य तो यह है दिल का दर्द, काव्य से परे शब्द से दूर
कि मन में जाने कितने भाव, मगर मैं लिखने से मजबूर

और सोचो खुद अपनी बात कि अपना प्रथम प्रेम संलाप
सहम कर सकुच गये थे बोल रह गया मन में मन का ताप
ग्रहण कर सका तुम्हारे शब्द, मगर यह सोच, उठा था काँप
प्रेम का वह विषमय अभिशाप, हृदय का वह भीषण तूफ़ान
कि जिसने स्वर-द्रुम दिये उखाड़, मौन कर दिया विहग का गान।

और सोचो तो पल भर आज हमारी विकल विदा के क्षण
और वह घुटती घुटती साँझ, गगन से बहकी बहकी किरन
और ज्यों अभी अभी रुक जाय न उस पागल दिल की धड़कन
काँपते होंठ उमड़ते आँसू रुँधता गला और सब शान्ति
कि जैसे अर्द्धरात्रि तूफ़ान बीच मरघट की घुटती शान्ति

और अब, अब रहने दो मौन सुनोगी क्या तुम मेरा हाल ?
नाच कर रुक जाती है पवन, उभर कर झुक जाती है डाल
डाल में खो जाती है कूक, हृदय में सो जाता भूचाल
मगर क्या कहूँ कि जीवन शून्य, मगर क्या कहूँ कि हृदय उदास ?
मगर क्या मैं पछताऊँ बैठ कि तुम हो हाय न मेरे पास ?

ये माना जब थीं मेरे पास, तृप्त था तन, मुग्ध था मन,
गुदगुदाता था कलियों को, कभी हंस हंस कर मलय पवन
कि ज्यों अलसाई पलकों पर, स्वर्ण सपनों का सम्मोहन
बनी मायाविनि सी अनजान सरल अपने जादू के ज़ोर
खींचती थीं जीवन की नाव, मृदुल ममता की लेकर डोर

और अब, अब मैं माँझी एक अकेला दुर्बल बाहु पसार
ज़रा बढ़ने का करता यत्न मगर पड़ते उल्टे पतवार,
लहर से उठती क्षीण कराह काँप उठती है जल की धार,
मगर झोंका खाकर हिलडोल, डगमगा उठती मेरी नाव
कि जैसे तन-मन-जीवन-प्रान हिला जाते हैं मन के भाव

मगर यह सूनापन तो नहीं, यही तो है जीवन की राह
मिलन में मादकता हो मगर विरह में भी तो कितनी चाह
अमृत में शीतलता हो किन्तु, ज़हर में भी तो कितना दाह
मौत की लहर लहर पर प्राण ! हज़ारों जीवन हैं बलिहार
तुम्हारी एक दरस की चाह ! तुम्हारे सौ सौ दरस निसार !

न मुझसे आशा रक्खो प्राण कि मैं गूंथूंगा आँसू हार
कि मैं लेकर दो मुरझे फूल, करूं मृत जीवन का शृंगार
कि मैं काँटों से बचने-हेतु, बिछा दूँ पथ पर अपना प्यार
तुम्हारी चोट तुम्हारी भेंट, करूं उसको रो कर स्वीकार ?
नहीं इतने दुर्बल हैं प्राण, नहीं इतना दुर्बल है प्यार !

तुम्हारी चोट कि उल्कापात, सर्द है हृदय, सर्द अरमान
जम गये हैं आँखों में अश्रु, जम गये हैं ओठों पर गान
सहम कर दर्द हुआ बेहोश अचेतन नीरव आकुल प्राण
अरे पर जाने यह क्या क्या, भूल लिख गया तुम्हारे पास
मृदुल तुम किसलय सी अनमोल, न सह पाओगी मेरा हास

रहो तुम आँसू से सन्तुष्ट करो तुम पीड़ा पर विश्वास
तुम्हारी खातिर कह दूँ प्राण कि जीवन सूना हृदय उदास
न पहुँचे तुम्हें ज़रा भी ठेस, तुम्हारा भोला सा विश्वास
आह ओ भोली सी विश्वास, अरी ओ मेरे मन की प्यार !
कि गीतों की प्रतिमा सस्पन्द, कि गीतों की सुन्दर आकार !

अरी आकारों की लय-गूँज, गूँज की मिटती करुण पुकार !
आज तुम मुझसे कितनी दूर, हाय तुम कितनी कितनी दूर
कि जैसे नभ के तारे पास, सदा को दूर-सदा मजबूर !

मगर अच्छा है रानी रहो, सदा तुम दूर, न रहो समीप
न लहरों सी घिर आओ पास, कि डूबे अटल प्यार का दीप
न झोंकों सी लहराओ पास, कि बुझ जाये मन-मन्दिर-दीप
रहो तुम इतनी इतनी दूर कि मन झुक सके तुम्हारी ओर
समा पाये अन्तर में प्यार, प्यार की पीर, पीर घनघोर

ताकि हम होने पायें एक बहुत आवश्यक है अन्तर
ज़रा दीपक जल पाये विहंस, बहुत आवश्यक सघन तिमिर
क्योंकि फूला करते हैं फूल, कि आवश्यक है काँटे प्रखर !
सदा इस दूरी में ही प्राण, फला फूला करता है प्यार
सदा झूला करता है ऐक्य, डाल झूला अन्तर की डार

खत्म होने को आई रात बुझ गये तारे गगन उदास
नशीले गीले चारों ओर उड़ रहे फूलों के निश्वास
उठा आता है बेबस दर्द ! आह कम्बख्त हृदय के पास
शेष फिर कभी—शेष पर कभी न हो पायेगी अपनी बात
यही है प्रेम ! अभी आरम्भ, अभी इब्तिदा, अभी शुरुआत !

अभी यह ज़हरीली शुरुआत
अभी यह सुन्दर मधुर प्रभात
और फिर घन-विस्मृति की रात,

मगर तम के पर्दे को चीर, चन्द्रकिरनों की सी मुस्कान !

तुम्हारी पाती मिली अबोध
तुम्हारी पाती मिली अजान !

दूसरा पत्र

(उत्तर : कई वर्ष बाद)

तुम लिखती हो—
इस नई उम्र में जाने कैसा
असमय जर्जर वृद्धापन
इस तन मन पर बूढ़े मुर्दा अजगर सा बैठा जाता है।
मैं,
जिसे कि तुम
फूलों की मीनारों जैसी
ताज़ी, सुन्दर, सुकुमार, सजलतन कहते थे
यदि आज मुझे तुम देखो तो
बेहद उदास हो जाओगे।
मेरे बाइस मधुमासों को
ढँक दिया किसी ने
मकड़ी के भूरे मटमैले जाले से,
औ' अंग अंग में खिलने वाले
नये जवान गुलाबों की
पँखुरियों पर
अनगिनत झुर्रियाँ
रोज़ रोज़ बढ़ती जातीं
मैं साँसें लेती हूँ जैसे
टूटे फूटे बर्बाद मक़बरे की
नीवों में दबी हुई

अभिशापग्रस्त प्रेतात्माएं
निश्वासें भरती हैं
अक्सर सन्नाटे में।
मैं चलती हूँ
जैसे मरने वाले की आँखों में
अक्सर धुंधली छायाएँ चलती हैं।

सच कहती हूँ
विश्वास करो
वह कभी तुम्हारे सपनों पर पाँखें साधे,
निस्सीम गगन को चीर
कहीं उड़ जाने का
नित अपराजित विश्वास
न जाने किसने,
कैसे छीन लिया ?
मुझमें अब
पहले जैसी कोई बात नहीं।
हाँ, कभी कभी
कुछ बातें याद आ जाती हैं।
किस तरह तुम्हारे सीने में
सहमी दुबकी गौरैया सी
अपने को सात सितारों की
शहज़ादी समझा करती थी
किस तरह आत्मा की निश्छल गहराई से
मैंने तुमको हरदम विश्वास दिलाया था—
'जब तक बादल की लहरों पर

चन्दा का फूल तैरता है
जब तक
बर्फ़ीले मैदानों पर
धधक रहा है ध्रुवतारा
तब तक मैं अपनी आत्मा की तरुणाई पर
भूले भटके भी आँच नहीं आने दूँगी
यह एक जनम तो क्या
अनगिन जनमों तक—
–तुम विश्वास करो—
मेरे कंचन-तन, चन्दन-मन पर
धूमिलता की रेख नहीं लग पायेगी
मेरी आत्मा के संग
तुम्हारे अमिट स्नेह का सम्बल है
मैं अपनी अन्तिम साँसों तक
जीवन से हार न मानूंगी !'

पर तुमसे कुछ न छिपाऊंगी
यदि चाहूँ भी तो
तुमसे कुछ न छिपा सकती
मैं,
आज पराजित लुटे हुए बेबस स्वर में,
स्वीकार कर रही हूँ,
मैं बिल्कुल बदल गई !
मेरे माथे पर अपने पावन होठों से
तुमने जितने विश्वास कर दिये थे अंकित
जीवन ने उनको कितनी जल्दी मिटा दिया !

आत्मा की तरुणाई
कंचन-तन, चन्दन-मन
सब महज़ खोखली परिभाषाएँ सिद्ध हुईं
मैं चली जा रही हूँ ऐसे
जैसे लहरों पर विवश लाश बहती जाये !
यूं कभी कभी
कुछ बातें सोच सोच कर मन
बिलकुल डूबा डूबा सा लगने लगता है;
पर कुछ दिन मन घबरायेगा
फिर धीरे धीरे आदत ही पड़ जायेगी।

इतनी जल्दी यह टूट गिरेगा ताजमहल
इसका विश्वास तुम्हें तो क्या
खुद मुझे न था।

यदि पहले वाली मैं होती
तो मुक्त हृदय से पाँवों पर सर रख
अपनी सारी कमज़ोरी आँसू में ढलका देती !
पर अब इतना भी साहस नहीं रहा मुझमें,
अपनी मजबूरी से मन ही मन पराजिता
अक्सर इन पर, तुम पर, सारी दुनिया पर
झल्ला लेती हूँ
निष्क्रिय विद्रोह आदमी को
मन से कितनी जल्दी वृद्धा कर देता है !

पर जाने दो,
ये छोटी मोटी बेमहत्त्व की बातें हैं
जिनको हमने

पागलपन में
बेहद महत्व दे डाला था
तुम अब भी जिनमें खोये खोये फिरते हो !
यह सोच कभी मेरा भी मन भर आता है !
तुम मुझको चाहे जो समझो
लेकिन मेरी इतनी बिनती स्वीकार करो
इन मुर्दा सपनों को
सीने से चिपकाये रखने से ही अब क्या होगा ?
ये मुर्दा सपने
बूंद बूंद करके तुमको पी डालेंगे;
तुमको मैं अपनी
मजबूरी लाचारी की
अपने कमज़ोर, पराजित विश्वासों की
क़सम दिलाती हूँ
मेरी बस इतनी सी बिनती स्वीकार करो,
इन मुर्दा सपनों को
सीने से चिपका कर रखने भर से ही क्या होगा !

कविता की मौत

लाद कर ये आज किसका शव चले ?
और इस छतनार बरगद के तले,
किस अभागिन का जनाज़ा है रुका,
बैठ इसके पाँयते, गरदन झुका,
कौन कहता है कि
कविता मर गयी ?
मर गयी कविता
नहीं तुमने सुना ?
हाँ, वही कविता
कि जिसकी आग से
सूरज बना
धरती जमी
बरसात लहराई
और जिसकी गोद में बेहोश पुरवाई
पंखुरियों पर थमी ?
वही कविता
विष्णुपद से जो निकल
और ब्रह्मा के कमण्डल से उबल
बादलों की तहों को झकझोरती
चाँदनी के रजत-फूल बटोरती
शम्भु के कैलाश पर्वत को हिला
उतर आयी आदमी की ज़मीं पर,

चल पड़ी फिर मुस्कुराती
शस्य-श्यामल, फूल, फल, फसलें खिलाती,
स्वर्ग से पाताल तक
जो एक धारा बन बही,
पर न आखिर एक दिन वह भी रही।
मर गयी कविता वही
एक तुलसी-पत्र औ'
दो बूँद गङ्गाजल बिना,
मर गयी कविता, नहीं तुमने सुना?
भूख ने उसकी जवानी तोड़ दी,
उस अभागिन की अछूती माँग का सिन्दूर
मर गया बनकर तपेदिक़ का मरीज़
औ' सितारों से कहीं मासूम सन्तानें,
माँगने को भीख हैं मजबूर।
या पटरियों के किनारे से उठा,
बेचते हैं,
अधजले
कोयले।
(याद आती है मुझे
भागवत की वह बड़ी मशहूर बात
जब कि ब्रज की एक गोपी
बेचने को दही निकली,
औ, कन्हैया की रसीली याद में
बिसर कर सुध बुध
बन गयी थी खुद दही।
और ये मासूम बच्चे भी

बेचने जो कोयले निकले
बन गये खुद कोयले
श्याम की माया !)
और अब वे कोयले भी हैं अनाथ
क्योंकि उनका भी सहारा चल बसा !
भूख ने उसकी जवानी तोड़ दी !
यूँ बड़ी ही नेक थी कविता,
मगर धनहीन थी, कमजोर थी
और बेचारी ग़रीबिन मर गयी !

मर गयी कविता ?
जवानी मर गयी ?
मर गया सूरज, सितारे मर गये
मर गये, सौन्दर्य सारे मर गये ?
सृष्टि के आरम्भ से चलती हुई
प्यार की हर साँस पर पलती हुई
आदमीयत की कहानी मर गयी ?
झूठ है यह !
आदमी इतना नहीं कमजोर है !
पलक के जल और माथे के पसीने से
सींचता आया सदा जो स्वर्ग की भी नींव
ये परिस्थितियाँ बना देंगी उसे निर्जीव !
झूठ है यह !
फिर उठेगा वह
और सूरज को मिलेगी रोशनी
सितारों को जगमगाहट मिलेगी !

क़फ़न में लिपटे हुए सौन्दय को
फिर किरन की नरम आहट मिलेगी !
फिर उठेगा वह,
और बिखरे हुए सारे स्वर समेट
पोंछ उनसे ख़ून,
फिर बुनेगा नयी कविता का वितान
नये मनु के नये युग का जगमगाता गान !
भूख, ख़ूँरेज़ी, ग़रीबी हो मगर
आदमी के सृजन की ताक़त
इन सबों की शक्ति के ऊपर
और कविता सृजन की आवाज़ है !
फिर उभर कर कहेगी कविता
"क्या हुआ दुनिया अगर मरघट बनी,
अभी मेरी आख़िरी आवाज़ बाक़ी है,
हो चुकी हैवानियत की इन्तेहा,
आदमीयत का मगर आग़ाज बाक़ी है !
लो तुम्हें मैं फिर नया विश्वास देती हूँ,
नया इतिहास देती हूँ !
कौन कहता है कि कविता मर गयी ?"

सुभाष की मृत्यु पर

दूर देश में किसी विदेशी गगन-खण्ड के नीचे
सोये होगे तुम किरनों के तीरों की शय्या पर
मानवता के तरुण रक्त से लिखा सन्देशा पाकर
मृत्यु-देवताओं ने होंगे प्राण तुम्हारे खींचे—

प्राण तुम्हारे धूमकेतु से चीर गगन-पट झीना
जिस दम पहुँचे होंगे देवलोक की सीमाओं पर
उलट गई होगी आसन से मौत मूर्छित होकर
और फट गया होगा ईश्वर के मरघट का सीना—

और देवताओं ने लेकर ध्रुवतारों की टेक—
छिड़के होंगे तुम पर तरुणाई के खूनी फूल,
खुद ईश्वर ने चीर अंगूठा अपनी सत्ता भूल
उठ कर स्वयम् किया होगा विद्रोही का अभिषेक;

किन्तु स्वर्ग से असन्तुष्ट तुम, यह स्वागत का शोर
धीमे-धीमे जब कि पड़ गया होगा बिल्कुल शान्त,
और रह गया होगा जब वह स्वर्ग-देश एकान्त
खोल कफ़न ताका होगा तुमने भारत की ओर—

निराला के प्रति

वह है कारे कजरारे मेघों का स्वामी
ऐसा हुआ कि
युग की काली चट्टानों पर
पाँव जमा कर
वक्ष तान कर
शीश घुमा कर
उसने देखा
नीचे धरती का ज़र्रा ज़र्रा प्यासा है,
कई पीढ़ियाँ
बूंद बूंद को तरस तरस दम तोड़ चुकी हैं,
जिनकी एक एक हड्डी के पीछे
सौ सौ काले अन्धड़
भूखे कुत्तों से
आपस में
गुंथे जा रहे।
प्यासे मर जाने वालों की
लाशों की ढेरी के नीचे
कितने अनजाने
अनदेखे
सपने
जो न गीत बन पाये
घुट घुट कर मिटते जाते हैं।
कोई अनजनमी दुनिया है
जो इन

लाशों की ढेरी को
उलट पलट कर
ऊपर
उभर उभर आने को
मचल रही है !

वह था कारे कजरारे मेघों का स्वामी
उसके माथे से कानों तक
प्रतिभा के मतवाले बादल लहराते थे
मेघों की वीणा का गायक
धीर गँभीर स्वरों में बोला—
"झूम झूम मृदु गरज गरज घनघोर
राग अमर अम्बर में भर निज रोर।"

और उसी के होठों से
उड़ चलीं गीत की श्याम घटाएँ
पाँखें खोले
जैसे श्यामल हंसों की पाँतें लहरायें।

कई युगों के बाद आज फिर
कवि ने मेघों को
अपना सन्देश दिया था
लेकिन किसी यक्ष-विरही का
यह करुणा-सन्देश नहीं था,
युग बदला था
और आज नवमेघदूत को
युग-परिवर्तक कवि ने
विप्लव का गुरुतर आदेश दिया था।

बोला वह—
—"ओ विप्लव के बादल
घन भेरी गर्जन से
सजग सुप्त अंकुर
उर में पृथ्वी के, नवजीवन को
ऊँचा कर सिर ताक रहे हैं
ऐ विप्लव के बादल फिर फिर !"—

हर जलधारा
कल्याणी गंगा बन जाये
अमृत बन कर प्यासी धरती को जीवन दे,
औ' लाशों का ढेर बहा कर
उस अनजनमी दुनिया को ऊपर ले आये
जो अन्दर ही अन्दर
गहरे अँधियारे से जूझ रही है—
और उड़ चले
वे विप्लव के विषधर बादल
जिनके प्राणों में
थी छिपी हुई अमृत की गंगा !
बीते दिन वर्ष मास······
························

बहुत दिनों पर,
एक बार फिर
सहसा उस मेघों के स्वामी ने यह देखा—
वे विप्लव के काले बादल
एक एक कर बिन बरसे ही

लौट रहे हैं !
जैसे थक कर
सांध्य-विहग घर वापस आयें
वैसे ही वे मेघदूत अब भग्नदूत से वापस आये !

चट्टानों पर
पाँव जमा कर
वक्ष तान कर
उसने पूछा—
"झूम झूम कर
गरज गरज कर
बरस चुके तुम !"
अपराधी मेघों ने नीचे नयन कर लिये
और काँप कर वे यह बोले :—
"विप्लव की प्रलयंकर धारा
कालकूट विष
सहन कर सके जो
धरती पर ऐसा मिला न कोई माथा !
विप्लव के प्राणों में छिपी हुई
अमृत की गंगा को
धारण कर लेने वाली
मिली न कोई ऐसी प्रतिभा,
इसीलिये हम नभ के कोने कोने में
अब तक मँडराये
लेकिन बेबस

फिर बिन बरसे
वापस आये !
ओ हम कारे कजरारे मेघों के स्वामी
तुम्हीं बता दो
कौन बने इस युग का शंकर !
जो कि गरल हँस कर पी जाये
और जटायें खोल
अमृत की गंगा को भी धारण करले !',

उठा निराला, उन काले मेघों का स्वामी
बोला—"कोई बात नहीं है
बड़े बड़ों ने हार दिया है कन्धा यदि तो
मेरे ही कन्धों पर होगा
अपने युग का गंगावतरण !
मेरी ही प्रतिभा को हँस कर कालकूट भी पीना होगा !"

और नये युग का शिव बन कर
उसने अपना सीना तान जटायें खोलीं !

एक एक कर वे काले ज़हरीले बादल
उतर गये उसके माथे पर
और नयन में छलक उठी अमृत की गंगा !
और इस तरह पूर्ण हुआ यह नये ढंग का गंगावतरण !

और आज वह कजरारे मेघों का स्वामी
ज़हर सम्हाले, अमृत छिपाये
इस व्याकुल प्यासी धरती पर
पागल जैसा डोल रहा है,

आने वाले स्वर्णयुगों को
अमृत-कणों से सींचेगा वह
हर विद्रोही क़दम
नई दुनिया की पगडण्डी लिख देगा,
हर अलबेला गीत
मुखर स्वर बन जायेगा
उस भविष्य का
जो कि अँधेरे की पर्तों में अभी मूक है !
लेकिन युग ने उसको अभी नहीं समझा है
वह अवधूतों जैसा फिरता पागल नंगा,
प्राणों में तूफ़ान, पलक में अमृत-गंगा !
प्रतिभा में
सुकुमार सजल
घनश्याम घटाएँ
जिनके मेघों का गम्भीर अर्थमय गर्जन
है जब कभी फूट पड़ता अस्फुट वाणी में
जिसको समझ नहीं पाते हम
तो कह देते हैं
यह है केवल पागलपन
कहते हैं
चैतन्य महाप्रभु में, सरमद में,
ईसा में भी
कुछ ऐसा ही पागलपन था
उलट दिया था
जिसने अपने युग का तख़्ता !

थके हुए कलाकार से

सृजन की थकन भूल जा देवता !
अभी तो पड़ी है धरा अधबनी,
अभी तो पलक में नहीं खिल सकी
नवल कल्पना की मृदुल चाँदनी,
अभी अधखिली ज्योत्स्ना की कली
नहीं ज़िन्दगी की सुरभि में सनी !
अभी तो पड़ी है धरा अधबनी,
अधूरी धरा पर नहीं है कहीं
अभी स्वर्ग की नींव का भी पता !
सृजन की थकन भूल जा देवता !

रुका तू, गया रुक जगत का सृजन,
तिमिरमय नयन में डगर भूल कर
कहीं खोगई रोशनी की किरन
अलस बादलों में कहीं सो गया
नई सृष्टि का सात-रंगी सपन
रुका तू गया रुक जगत का सृजन,
अधूरे सृजन से निराशा भला
किसलिये जब अधूरी स्वयम् पूर्णता ?
सृजन की थकन भूल जा देवता !

प्रलय से निराशा तुझे हो गई
सिसकती हुई साँस की जालियों में
सबल प्राण की अर्चना खो गई
थके बाहुओं में अधूरी प्रलय
औ' अधूरी सृजन-योजना खो गई
थकन से निराशा तुझे हो गई ?
इसी ध्वंस में मूर्छित सी कहीं
पड़ी हो नई ज़िन्दगी, क्या पता !
सृजन की थकन भूल जा देवता !

कवि और अनजान पगध्वनियाँ

(छन्द-सम्वाद)

कवि

काली ठण्डी चट्टानों पर
उदास बैठा
मैं सोच रहा
क्या हुआ मुझे ?
हैं मेरे पास सजल मोती सी उपमाएं
ताज़े वनफूलों सी बेदाग़ नई वाणी
मेरे बस एक इशारे पर
हर एक छन्द
पावस के मोर सरीखा नाच उठा करता !
मैं चाहूँ तो
गहराती मेघ-घटाओं को
अपने छन्दों के ताने बाने में कस लूं।
लेकिन मेरा अभिशाप यही
हैं साधन मुझको मिले सभी कुछ कहने को
लेकिन मेरी आत्मा में अब
कुछ नहीं रहा है कहने को !
कुछ नहीं रहा है कहने को !
कुछ नहीं रहा है कहने को !
कुछ लक्ष्य नहीं, जिस पर मैं प्रत्यंचा खींचूं
अब कोई गहरा दर्द नहीं है सहने को।

अनजान पगध्वनियाँ

ठहरो ! ठहरो ! ठहरो ! ठहरो ! हम आते हैं
हम नई चेतना के बढ़ते अविराम चरण !
हम मिट्टी की अपराजित गतिमय सन्तानें,
हम अभिशापों से मुक्त करेंगे कवि का मन !

कवि

मेरी मोती सी उपमाओं पर धूल जमी
मेरी पलकों पर स्वप्न नहीं
मकड़ी का भूरा जाला है
सब से बढ़ कर मुझको यह दंशन होता है
अक्सर जीवन का सत्य द्वार मेरे आया औ' लौट गया
उससे बढ़ कर
अब यह मेरा खोखला हृदय
धीरे-धीरे है भूल रहा
"मैं कभी सत्य के चरणों का
भी प्यासा था,"
अपनी कुण्ठाओं की
दीवारों में बन्दी
मैं घुटता हूँ !

अनजान पगध्वनियाँ

ठहरो ! ठहरो ! ठहरो ! ठहरो ! हम आते हैं
हम नई चेतना के बढ़ते अविराम चरण !
हम मिट्टी की अपराजित गतिमय सन्तानें
हम अभिशापों से मुक्त करेंगे कवि का मन !

यक्ष का निवेदन

कालिदास के प्रति

मैं हूँ यक्ष,

मेघदूत के छन्द छन्द में बन्दी विरही यक्ष !

तुम हो मेरी दुखी, बन्दिनी आत्मा के निर्माता;

यह वियोग के पाश बँधे जो मेरे चारों ओर

यह तड़पन, यह टीस, न जिससे कभी छूट मैं पाता !

अपनी कविता के जुनून में, वाणी के सिरमौर !

कितना बड़ा दर्द कर दिया मेरे मन पर नक़्श !

तुम तो मुक्ति पा गए मुझ पर अपना दर्द बिखेर,

लेकिन हाय ! दे गये मुझको युग-युग का अभिशाप !

जब जब घिरा करेंगे नभ में ये कजरारे बादल,

मुझे झेलना ही होगा तब यह तड़पन का पाप !

नील घटा की आग मुझे बरबस कर देगी पागल,

किसका पाप मढ़ा किसके सर ? यह कवि का अंधेर !

किस रहस्यमय जीवन में तुम लाये मुझको खींच ?

सदा सदा के लिए छिन गया मानव का संसार;

यह क्या खेल तुम्हें सूझा, ओ सपनों के शहज़ादे !

इस पीड़ा से कभी न होगा क्या मेरा निस्तार ?

इन छन्दों से छुटकारे की कोई राह बता दे,

यह विचित्र सी योनि, देवता और प्रेत के बीच !

मेरा प्यार न मेरा, मेरा अपना नहीं रहा मन,
यह कुबेर के कठिन शाप से ज्यादा निष्ठुर शाप
तुम दे बैठे हो, मेरी आत्मा को अनजाने मे,
क्या क़सूर था, ऐसा मैंने कौन किया था पाप,
छोड़ दिया जो मुझे भटकने को इस वीराने में
यह कुबेर के निर्वासन से कहीं कड़ा निर्वासन।

मेरा प्यार आज बन गया महज़ तुम्हारा साधन
यह तो महज़ तुम्हारी कविता के सपने मदमाते,
बादल, अलका और यक्षिणी, मेरे हित बेकार !
मुझे मिला क्या ? घाव महज़ जो कभी न भरने पाते।
क्षण भर अपनी कला अलग रख मुझ पर करो विचार !
बादल झूठे, झूठ यक्षिणी, सत्य महज निर्वासन !

यह पथरीला दर्द काव्य का मुझसे सहा न जाता,
भोज-पत्र की परत परत में दबा घुटा मेरा मन,
कविता की पाँतें नागिन बन मुझे निगलती जातीं,
धन्य तुम्हारी कला महाकवि, धन्य कला का दंशन !
काश कि क्षण भर इस कारा से मुझे मुक्ति मिल पाती,
मेघदूत के छन्द छन्द में मैं खुद आग लगाता !

कालिदास यदि होते, कहते, यक्ष बनो मत पागल,
व्यक्ति नहीं तुम, तुम न कल्पना, तुम कवि-मन के प्यार,
तुम्हें सदैव बदा निर्वासन, नहीं कभी मुक्ति,
अलका की यक्षिणी तुम्हारी ही तो प्यास अपार,
जग का हर सौंदर्य तुम्हारी पीड़ा से अभिषिक्त,
तुम वह दर्द, रहा जो युग युग से जीवन का सम्बल !

फूलों की मौत

ऐसी क़िस्मत रही कि जिसने
मुझको प्यार किया,
वह फूलों की मौत मर गया !

उनके होठों पर था मेरे चुम्बन का फ़ौलाद
उनकी चोटों पर था मेरी हमदर्दी का पाप
ताकि अभागे फिर भी मुझको दे न सकें अभिशाप
ऐसी भी क्या मौत कि जिसमें मरना भी बेस्वाद

मरते हुए भी कर न सके वे अपनी एक वसीयत
उनकी इस पूजा का मैंने यह प्रतिकार दिया !

मैंने कभी न चाहा था ये छोर मौत का छूलें
लेकिन मचल गईं जाने कैसी भूलें अनजानी
कुछ तो तोड़फोड़ के आदी बचपन ने ज़िद ठानी
कुछ तरुणाई के मौसम में अग्निफूल ही फूले

आग और बचपन ने ऐसे नये तरीक़े ढूंढे
ले चुम्बन का मोल हिचकियों का व्यापार किया !

कुचली पाँखुरियों की दर्दीली आवाजें आतीं
और स्वर्ग में मँडराते मुर्दा होठों के चुम्बन
शिथिल पड़ रहा मेरा साहस, रुकती दिल की धड़कन
और इस घुटन में मेरी साँसें हैं डूबी जातीं

मैं कहता मैं चला स्वर्ग से मुझको धरती प्यारी
मैंने अपने पापों का भी नया सिंगार किया।

यह है मेरे पाप पुण्य का सारा लेखा जोखा
इसे जानकर मुझे प्यार करने का करना साहस
वैसे मेरी कोमलताएँ, मेरी वाणी का रस
मेरी कला, कल्पना, दर्शन, यह सब केवल धोखा

खूब समझ कर जीवन में आओ वैसे मुझको क्या
मैंने तो हर एक खिलौने को स्वीकार किया।

घबराहट की शाम

आज छोड़ सब काम-काज तुम बैठो मेरे पास !

आज अजब सी शाम कि मेरा मन इतना घबराया,
अभी वक्त ही क्या लेकिन इतना सन्नाटा छाया !

जगह जगह पर,
गिर जाते बादल अलसा कर
साँझ-तरैयों की साँसें भी ठण्डी और उदास !

ऐसा लगता आज कि मेरा सारा जीवन नष्ट
ऐसा लगता आज कि मेरी सभी साधना भ्रष्ट
मैंने हरदम
घोटा अपने सपनों का दम,
आज मुझी से बदला लेती मेरे मन की प्यास !

आज छोड़ सब काम-काज तुम बैठो मेरे पास ?

साँसों में उलझा दो अपनी एक अलक बारीक,
माथे पर धर हाथ शर्ट का कालर कर दो ठीक
धीमे धीमे,
और तुम्हारी ही गोदी में,
आज आखिरी साँस तोड़ दे मेरा भी विश्वास

झाँक रहा है चाँद इधर की खिड़की कर दो बन्द,
मरने वाला किसी गवाही का न ज़रूरतमन्द
हट कर, उठ कर
मुझे देखने मत दो बाहर,
आज खुदकुशी करने पर आमादा है आकाश !
आज छोड़ सब काम-काज तुम बैठो मेरे पास !

दो आवाज़ें

(छंद-संवाद)

पहली आवाज़

जैसे बन्द गली में अन्धे चमगादड़
दीवारों से टकरा टकरा चीखा करते !
वैसे ही मैं इस अँधियारे में
चीख़ रहा !
यह बन्द गली
यह काले तम की ऊँची-ऊँची दीवारें
यह महाकाल के जबड़े जैसा अँधियारा
मैं इनमें घुट मर जाऊँगा
कोई मुझको छुटकारा दो !
कोई मुझको……
………………

[ख़ामोशी]

कोई तो दो रोशनी
राह बतलाओ तो
मुझमें हिम्मत है
ताक़त है,
पर अँधियारे के आगे
बिलकुल बेबस हूँ !
तुम !
तुम भी हो खामोश ?

दूसरी आवाज़

मैं सुनती हूँ,
मैं पास तुम्हारे हूँ अब भी
तुम दूर नहीं हो मेरी बाँहों में हो।
लेकिन कुछ और छटपटाओ
आगे बढ़ते आओ
अँधियारा पूरी तरह निगल लेगा तुमको
तब सारे मन्थन से निजात मिल जायेगी।

पहली आवाज़

यह तुम बोलीं।
आवाज़ तुम्हारी है—पर यह क्या कहती हो?
आवाज़ तुम्हारी नहीं।
और कोई शायद
मुझको अँधियारे के भीतर से
छलता है।

दूसरी आवाज़

अँधियारा तो मैं ही हूँ,
कोई और नहीं।
मैं बोल रही, तम के पर्दे के पीछे से
बढ़ते आओ, तुम मेरी ही बाँहों में हो।

पहली आवाज़

अँधियारा हो।
पर मैं अँधियारे को तो नहीं पुकार रहा,
तुमको,

तुम जो मेरा प्रकाश हो, आत्मा हो!
रोशनी मुझे दो!

दूसरी आवाज़

रोशनी? आत्मा?
यह सब एक वहम भर है,
मैं एक चमकते अँधियारे की छाया थी;
मिट गई चमक
हो गया लीन अँधियारा, फिर अँधियारे में
क्यों डरते हो? बढ़ते आओ!
मैं ग़ैर नहीं
मैं कभी आत्मा बनकर तुममें रोशन थी
मैं आज अँधेरा बनकर तुमको घेरे हूँ!

पहली आवाज़

अँधियारा हो?
रोशनी नहीं? प्रेरणा नहीं? आत्मा नहीं?
अँधियारा हो?
तुम जो भी हो स्वीकार मुझे
पर इस अंधे गलियारे से छुटकारा दो
यह दर्द मौत से ज़्यादा भारी पड़ता है!

दूसरी आवाज़

बढ़ते आओ! बढ़ते आओ! घबराओ मत!
यह प्यास रोशनी की जो तुममें बाक़ी है
तुमको दर-दर भटकाती है
उसको छोड़ो
तम की बाँहों के सिवा कहीं भी चैन नहीं!

[ख़ामोशी]

तुम चुप क्यों हो ?

[ख़ामोशी]

बोलो ! बोलो ! क्या चले गये ?
क्या लौट गये ?

[ख़ामोशी]

उफ़ मेरी बाँहों में शव जैसा ठण्ढा
कौन गिरा ?
ओहो तुम हो ?
आख़िर मंज़िल तक पहुँच गये,
सब ख़त्म हुआ !
अब कितना शीतल है माथा
वह गर्म प्यास रोशनी, ज़िन्दगी, प्रतिभा की
अब नहीं रही
वह सारी तड़पन-बेचैनी का कारण थी
अब मेरी बाँहों में अनन्त विश्राम करो
काफ़ी दुख अपने जीवन में तुमने पाया
अँधियारे का भूला भटका पागल टुकड़ा
फिर अँधियारे की बाँहों में वापस आया !
ओ जीवन के नरमेध यज्ञ की पूर्णाहुति
अँधियारे की लपटें तुमको धीरे-धीरे खा जायेंगी
विश्राम करो !
विश्राम करो !!
विश्राम करो !!!

यह आत्मा की
खूँख़ार प्यास

रहने दो अपने ये कुन्तल बिखरे बिखरे
रहने दो अपनी ये नज़रें उलझी उलझी,
रहने दो अपने
भोले से चेहरे पर ये
कुछ दर्द भरा
कुछ टीस भरा
खोया-सा-मन,
रहने दो उसी जगह उलझा
वह आँसू जो
पलकों तक आते आते
हिल कर सहम गया,
वे बोल कि जो इस रुंधे गले तक आ पाये,
औ' फिर अलसा कर टूट गए,
जिनकी प्रत्याशा में मंगे के होंठ अभी तक खुले हुए।
बस,
इसी तरह मख़मूर उदासी के कोहरे में डूबी सी
भारी-भारी
रहने दो अपनी ये पलकें
अध-खुली-मुंदी
जिनमें जादू के पिघले सतरँग-धनुषों का
बेहद उदास-रस छलक रहा

कितने दिन बाद,
किसी नारी की आँखों में,
मैंने वह क्वाँरी अकुलाहट
वह बेचैनी,
वह आत्मा की पर्तों में गुंथे
दर्द की तड़पन देखी है,
वह दर्द कि जिसकी अनमापी गहराई में
कोई विराट अज्ञात सत्य भी घायल साँसें लेता है।
वह सत्य,
कि जिसकी भूखी आँखों का जादू
आदम की सन्तानों को हरदम पागल करता आया है!
वह युग युग का अन्तर-मन्थन
तड़पन, अकुलाहट, बेचैनी,
दीवानापन,
सब आज सिमट आया है इन
भारी भारी
सतरँग-धनुषों वाली
कजरारी पलकों में
जिन पर उदास फूलों के बादल छाए हैं।
ठहरो अपनी गोदी में सर रख कर क्षणभर
मेरे जलते माथे पर सपने बिखरा दो
जादू पढ़ दो,
तब तक,
जब तक इन पलकों में
ये इन्द्रधनुष हैं तैर रहे,

जब तक कि तुम्हारी आत्मा
इस अज्ञात सत्य की किरणों से आलोकित है,
क्षण भर में यह सम्मोहन छितरा जायेगा,
इसमें रत्ती भर नहीं तुम्हारा दोष, मगर
नारी की आत्मा इस विराट को
बहुत देर तक नहीं ग्रहण कर पाती है !
यह आत्मा की पावनता, मन की ऊँचाई,
ये रेशम के सपने
अनजान गुफाओं में खो जाते हैं !
औरत फिर उसके बाद वही रह जाती है,
वह तुच्छ ईर्ष्या, प्रबल अहम्, वह आडम्बर,
वह ऊन-सलाई के फन्दे से
जीवन का ताना-बाना बुनने वाली,
फिर सेज-पलंग, ढाँके-तन, चुम्बन-आलिंगन पर
ये सारे
ये चाँद-सितारे
इन्द्रधनुष बिक जाते हैं !

सच मानो तुमको दोष नहीं देता हूँ मैं
लेकिन इसमें रत्ती भर भी अत्युक्ति नहीं,
नारी की आत्मा
इस विराट को
बहुत देर तक नहीं ग्रहण कर पाती है !

लेकिन यह भी तो एक अजब मजबूरी है,
मानव की आत्मा

इस विराट के बिनों नहीं रह पाती हैं,
अपनी हज़ारों भूखी बाहें फैला कर
सपनों के पीछे पीछे दौड़ी जाती है,
गतिरोधों से टकराती, मड़राती, बलखाती
रेगिस्तानों में बहने वाली
घायल भूखी आँधी सी
यह आत्मा की खूँखार प्यास,
बस किसी विराट सत्य पर ही टिक पाती है—
वह सत्य किसी नारी की मंजुल बाँहों में ही
सीमित है
ऐसा विश्वास नहीं मुझको होता है अब !
वह कुछ बेहद कठोर, बेहद निर्मम स्वर है
जो जीवन को आगे ही खींचे जाता है—
वह स्वर जिसकी तीखी सशक्त टकराहट से
नारी की आत्मा में भी कुछ जग जाता है,
(यद्यपि इसका भी निर्णय अब तक हो न सका
नारी में आत्मा भी होती है या कि नहीं !)
फिर भी इतना तो ज़ाहिर है
उसके जीवन में कभी कभी ऐसे मंजुल क्षण आते हैं
कुछ दर्द भरे
कुछ टीस भरे
खोए-से-क्षण
जिनमें वह बन जाती है फूलों की माला,
जिनमें वह बन जाती है किरनों की वंशी,
जिसके रेशे रेशे में साँसें लेता है,

कोई संगीत भरा सपना आहिस्ते से ।

इस समय तुम्हारे तन मन अलकों पलकों पर
संगीत भरे सपने का जादू छाया है,
युग युग से गहराती आती पीड़ाओं का
यह संचित रस
इस वक़्त तुम्हारी आँखों में घिर आया है ?
औ' मन्त्र-मुग्ध नागिन सी झूम उठी है
मेरी आत्मा की ख़ूँख़ार प्यास ।

पर जाने दो,
ये भारी भारी बातें हैं,
कुछ अपने मन से हल्की फुल्की बात करो,
किस किस रंग की लच्छी से पल्ला काढ़ोगी,
सच कहता हूँ
कन्धे का यह कत्थई फूल
गोरी गोरी बाँहों पर बेहद फबता है,
तुम चुप क्यों हो
कुछ बात करो,
आखिर कल तो ये बातें तुमसे और किसी से
होंगी ही !

प्रतिध्वनि

यह थके क़दम यह हवा सर्द—

यह ज़ख़्म चीरता हुआ दर्द—

तो क्या है यह ज़िन्दगी, न जिससे मिलता कोई छुटकारा ?

(प्रतिध्वनि)......................................कारा...कार

कारा में आख़िर कभी शान्ति मिलती है बरबस क्षण भर को !

(प्रतिध्वनि)......................................बस क्षण भर को !

बस क्षण भर को !

तो किसी शर्त पर,

कहीं किसी समझौते पर

क्या कभी ज़िन्दगी में पलभर भी राहत पाना मुमकिन है

(प्रतिध्वनि)......................................नाममुकिन है !

नामुमकिन है !

प्रथम प्रणय

(दो दृष्टिकोण)

पहला दृष्टिकोण

यों कथा कहानी-उपन्यास में कुछ भी हो
इस अधकचरे मन के पहले आकर्षण को
कोई भी याद नहीं रखता
चाहे मैं हूँ, चाहे तुम हो !

कड़वा नैराश्य, विकलता, घुटती बेचैनी
धीरे धीरे दब जाती है,
परिवार, गृहस्थी, रोज़ी-धन्धा, राजनीति
अखबार सुबह, सन्ध्या को पत्नी का आँचल
मन पर छाया कर लेते हैं,
जीवन की यह विराट चक्की
हर एक नोक को घिस कर चिकना कर देती,
कच्चे मन पर पड़ने वाली पतली रेखा
तेज़ी से बढ़ती हुई उम्र के
पाँवों से मिट जाती है—

यों कथा-कहानी उपन्यास में कुछ भी हो
इस अधकचरे मन की पहली कमज़ोरी को
कोई भी याद नहीं रखता
चाहे मैं हूँ, चाहे तुम हो !

दूसरा दृष्टिकोण

यों दुनिया दिखलावे की बात भले कुछ हो
इस कच्चे मन के पहले आत्म-समर्पण को
कोई भी भूल नहीं पाता
चाहे मैं हूँ, चाहे तुम हो !

हर एक काम में बेतरतीबी, झुँझलाहट
जल्दीबाज़ी, लापरवाही
था दृष्टिकोण का रूखापन
अपने सारे पिछले जीवन
पर तीखे व्यंग-वचन कहना
या छोटे मोटे बेमानी कामों में भी
आवश्यकता से कहीं अधिक उलझे रहना
या राजनीति, इतिहास, धर्म, दर्शन के
बड़े लबादों में मुंह ढंक लेना—

इस सब से केवल इतना जाहिर होता है
यों दुनिया दिखलावे की बात भले कुछ हो
इस पहले पहले पावन आत्म-समर्पण को
कोई भी भूल नहीं पाता
चाहे मैं हूँ, चाहे तुम हो !

बातचीत का एक टुकड़ा

देखा !
अब मैं पहले से कितना बेहतर हूँ—
तुम मेरी लापरवाही पर सिर धुनती थीं
अब रहन-सहन में कितनी स्वच्छ व्यवस्था है !
तरतीबवार इस ओर किताबें सजी हुईं
यह एलबम है......... .. ..

....

न अब अपनी शामें बरबाद नहीं करता
कुछ कामकाज में हरदम खोया रहता हूँ

....

....बातें ?
अब बातें करने वाला रहा कौन ?

....

हाँ हँसता हूँ, कुछ कमोबेश की बात और
या शायद पहले से भी ज़्यादा हंसता हूँ
लेकिन किस पर ?
यह ख़ुद मुझको मालूम नहीं ।

....

हाँ ! यह तो है ! शोहरत तो क्या !
कुछ और लोग पहले से ज़्यादा जान गये ।
ज़िम्मेवारी, घुलना-मिलना, हंसमुख स्वभाव, निष्कपट हृदय—
तुम जैसा मुझे चाहती थीं, वैसा ही हूँ
तुम नहीं रहीं तो नहीं सही,
मुझमें रत्ती भर दाग़ नहीं लगने पाये
विश्वास करो इसका मुझको
हर घड़ी ध्यान रहता ही है ।
सच मानो मुझे कहीं से कोई कष्ट नहीं !

पर यह क्या पागल !
मैं बेहतर हूँ, सुख से हूँ,
फिर इसमें ऐसी कौन बात है रोने की ?
जाने दो—
लो यह चाय पियो !

झील के किनारे

चल रहा हूँ मैं
कि मेरे साथ
कोई और
चलता
जा रहा है !

दूर तक फैली हुई
मासूम धरती की
सुहागन गोद में सोए हुए
नवजात शिशु के नेत्र सी
इस शान्त नीली झील
के तट पर—
चल रहा हूँ मैं
कि मेरे साथ
कोई और
चलता
जा रहा है !

गोकि मेरे पाँव
थक कर चूर
मेरी कल्पना मजबूर
मेरे हर क़दम पर

मंज़िलें भी हो रही हैं
और मुझसे दूर
हज़ारों पगडण्डियाँ भी
उलझनें बनकर
समाई जा रही हैं
खोखले मस्तिष्क में;
लेकिन,
वह निरन्तर जो कि
चलता आ रहा है साथ
इन सबों से सर्वथा निरपेक्ष
लापरवाह
नीली झील के
इस छोर से
उस छोर तक
एक जादू के सपन सा
तैरता जाता,
उसे छू
ओस भीगी
कमल पाखुरिया
सिहर उठतीं,
कटीली लहरियों
को लाज रंग जाती
सिन्दूरी रंग,
पुरइन की नसों में
जागता

अंगड़ाइयाँ लेता
किसी भोरी कुंआरी
जलपरी
के प्यार का सपना !
कमल लतरें
मृणालों की स्नान-शीतल
बाँह फैला कर
उभरते फूल-यौवन के
कसे से बन्द ढीले कर
बदलती करवटें;
इन करवटों की
इन्द्रजाली प्यास में भी
झूम लहरा कर
उतरता, डूबता,
पर डूब कर भी
सर्वथा निरपेक्ष
इन सबों के बन्धनों को
चीर कर, झकझोर कर
वह शान्त नीली झील की
गहराइयों से बात करता है—
गोकि मेरा पन्थ उसका पन्थ
उसके क़दम मेरे साथ
किन्तु वह गहराइयों से
बात करता चल रहा है !
सृष्टि के पहले दिवस से

शान्त नीली झील में सोई हुई गहराइयां
जिनकी पलक में
युग युगों के स्वप्न बन्दी हैं !
पर उसे मालूम है
इन रहस्यात्मक,
गूढ़ स्वप्नों का
सरलतम अर्थ
जिससे हर क़दम
का भाग्य,
वह पहचान जाता है !

इसलिये हालाँकि मेरे पाँव थक कर चूर
मेरी कल्पना मजबूर
मेरी मंज़िलें भी दूर
किन्तु फिर भी
चल रहा हूँ मैं
कि, कोई और
मेरे साथ
नीली झील की
गहराइयों से बात करता चल रहा है !

मेरी परछाहीं

घनी बर्फ पर,
इस ऊबड़-खाबड़ घाटी में
पाण्डवराज युधिष्ठिर के काले कुत्ते सी
पीछे पीछे पूँछ दबाए,
आखिर कब तक संग निभायेगी तू मेरा ?
ओ मेरी परछाहीं मेरा साथ छोड़ दे।

मंज़िल दर मंज़िल
पृथ्वी को नाप नाप कर
जाने कितने
पर्वत, घाटी, रेगिस्तानों को
यह मेरे भूखे क़दम निगल आये हैं
यह मरीज़ की अन्तिम साँसों सी
टेढ़ी मेढ़ी पगडण्डी
इस पर अभी न जाने कितनी दूर
मुझे चलते जाना है।
मेरी और तुम्हारी दुनिया कितने पीछे छूट चुकी है।

यह कोई अजनबी जगत है
जहां न सूरज की किरणें हैं

और न चन्दा की उजियारी
जहां न तारों की छाया में
दो जवान दिल धड़का करते
जहां होठ से मदिर प्रणय संगीत
इस तरह उड़ जाते हैं
जैसे घिसती किसी पुराने बर्तन से
राँगे की क़लई
जहां खण्डहरों में
सुनसान हवाएं सिसका करती हैं ज्यों-
कोई बूढ़ा अजगर रह रह कर अन्तिम सांसें लेता हो!
इस दुनिया में
जाने कितनी सदियों से आभास न मिलता
किसी एक ज़िन्दा हस्ती का!
मैं आवाज़ें देता देता कितने क्षितिज पार कर आया
लेकिन इन कमज़ोर दिशाओं से
प्रतिध्वनि तक लौट न पाई!
इस दुनिया में
जाने कितनी सदियों से
आभास न मिलता किसी एक ज़िन्दा हस्ती का!
हाँ,
कुछ प्रेतलोक की छायाएं तो अक्सर मिल जाती हैं;
एक छांह है
जिसके केवल
दो भूखी प्यासी बाहें हैं
हृदय नहीं है, क़दम नहीं हैं, होठ नहीं ह

इन सुनसान हवाओं में वह डोल रही है
केवल दो भूखी प्यासी बाँहें फैलाए !
एक छाँह है
जिसमें हैं केवल अंगुलियाँ,
औ' छोटा सा मांसपिण्ड है हृदय नाम का
उन अंगुलियों की पोरों पर रक्त जमा है
वे फैली फैली बालू पर
सदियों से लिखती जाती हैं जाने क्या क्या ?
लिखते-लिखते, लिखते-लिखते सदियां बीतीं
मगर न उनका एक वाक्य पूरा हो पाया,
बालू पर चलती फिरती काली छायाएं
उनके अक्षर अक्षर क्षत विक्षत कर देतीं
और अभागी अंगुलियों का यह सपना है
ये बालू के अक्षर अमर रहेंगे जैसे चांद सितारे !

एक छांह है,
उसके केवल दो पलकें हैं !
उन पलकों में घायल इन्द्रधनुष के सपने
मिनट मिनट पर करवट लेते
उन पलकों में अक्सर खून छलक आता है,
इन पलकों में तेज नहीं है, जोत नहीं है, सत्य नहीं है,
सूनी गहन गुफाओं सी पलकों में केवल
सात रंग के चमगादड़ से
गन्दे सपने उड़ते फिरते !
अन्धे सपने उड़ते फिरते !
उड़ते फिरते !

ऐसी जाने कितनी ही अशान्त छायाएं
क़दम क़दम पर सिर धुन धुन कर
चीख रहीं हैं !
कहते हैं,
यह उन लोगों की छायाएं हैं
जो इस पगडण्डी पर आकर भटक गये थे
जो कि अन्धेरे से भागे थे
घबराये थे,
जिनके तन से लपट गये थे काले अजगर
धरती जिनकी हड्डी हड्डी निगल गई थी !

और अगर कल मैं भी भटक गया ऐसे तो
अगर कहीं मेरी भी हिम्मत
कल जवाब दे बैठी ऐसे
और अजगरों ने मुझको भी चूर कर दिया
तो इस फैली फैली ख़ूनी बालू पर
मेरी परछाहीं
तू भी ऐसे ही तड़पेगी, मड़राएगी, सर पटकेगी,
युग युगान्त तक !

गो यह सच है
इस रेतीले बयाबान में
आंसू से भीगे मंजुल संगीत सरीखी
अक्सर ऐसी भी आवाज़ें आ जाती हैं
कोई यह भी कह जाता है

\

सघन तिमिर को कुचल कुचल कर
यदि मैं चलता ही जाऊँ तो
मेरे ही क़दमों से ज़िन्दा सूर्य उगेगा
मेरे मस्तक पर शंकर का चाँद खिलेगा
अन्धियारे के साँप गले का हार बनेंगे
और हवाओं पर
हल्का आलोक
सत्य का
उड़ा करेगा
जादू की किरणों से
छायाओं को छूकर
पूर्ण करेगा।
नयन-हीन की सूनी पलकों में
सपनों के
फूल खिलेंगे
पंथहीन को राह मिलेगी
बोल नहीं पाते जो
उनको वाणी का वरदान मिलेगा
जीवन
शरदातप में
खिलते हुए
कमल सा
स्वच्छ बनेगा
पावन होगा
केवल यदि मैं

हार न मानूं
क़दम न रोकूं
बढ़ता जाऊं !
लेकिन सम्भव है
कल मेरा साहस टूटे, हिम्मत छूटे
और भटक जाऊं मैं अपनी पगडण्डी से
काला अजगर मुझे कुण्डलियों में मरोड़ दे
तो मेरी बेशर्म पराजय की प्रतीक सी
ओ मेरी घायल परछाहीं
तू भी ऐसे ही तड़पेगी
मड़रायेगी
सर पटकेगी
इस फैली फैली
असीम ख़ूनी बालू पर !

अभी वक़्त है
ओ मेरी पागल परछाहीं
साथ छोड़ दे !

तेरे संग रहने से
और अकेलापन खाने लगता है
जब कि वही सब साथ नहीं हैं
जिनकी पलकों में ही
पहले पहल झलक पाई थी मैंने
इस भविष्य की,
इस यात्रा की !

किन्तु यात्रा के मुहूर्त में
भूल गये जो क़दम बढ़ाना !
खेल कूद में
भूल चूक में
वहीं रह गये !
ओ मेरी परछांही मेरा मोह छोड़कर
वापस जा तू
वहीं, जहाँ से शुरू हुई थी
यह पगडण्डी !
जाकर उन लोगों को मेरी याद दिलाना
कहना बड़े अन्धेरे जग में
तुमने उसको भेज दिया है
जिस दुनिया में प्रेतात्माएं ही रहती हैं
वहां उसे है महज़ आसरा
तुम लोगों के स्नेह प्यार का,
अगर सफ़र में संग आना तुम भूल गये
तो बात नहीं कुछ
लेकिन जिसकी आत्मा में थी
तुमने यह बेचैनी भर दी,
उसको आशीर्वाद भेजना भूल न जाना
पथहीनों से मिली प्रेरणा उसे पन्थ की
पराजितों के विश्वासों में विजय मिलेगी !
कौन जानता है
वह शायद
इस सम्बल का आश्रय पाकर

महाकाल के जबड़ों में से सत्य जीत कर
गरल पान कर
अमृत लाये
वापस आये !"

पर मेरी पागल परछाहीं
तेरा मोह व्यर्थ है बिल्कुल ।
अब आगे हैं
और ज़हर से भरी घाटियां
जिनके हर पत्थर के नीचे मौत छिपी है
जिन पर नहीं मोह का कुछ भी बस चलता है ।
इस मृणाल-तन्तु से नाज़ुक
खड्ग-धार से पतले पथ पर
अपनी परछाहीं तक का तो गुज़र नहीं है
इस पथ पर
मानव की घायल आत्मा सदा अकेली जाती
सत्य जीत कर वापस आती
या हिमशिखरों पर गल जाती ।

घनी बर्फ़ पर
इस ऊबड़ खाबड़ घाटी में
पाण्डवराज युधिष्ठिर के काले कुत्ते सी
पीछे पीछे पूंछ दबाये
आखिर कब तक संग निभायेगी तू मेरा
ओ मेरी परछाहीं
मेरा साथ छोड़ दे ।

फूल, मोमबत्तियाँ, सपने

यह फूल, मोमबत्तियाँ और टूटे सपने
ये पागल क्षण,
यह कामकाज दफ़्तर-फ़ाइल, उचटा सा जी
भत्ता वेतन !
ये सब सच हैं !
इनमें से रत्ती भर न किसी से कोई कम,
अन्धी गलियों में पथभ्रष्टों के ग़लत क़दम
या चन्दा की छाया में भर भर आने वाली आँखें नम,
बच्चों की सी दूधिया हँसी या मन की लहरों पर
उतराते हुए क़फ़न !
ये सब सच हैं !

जीवन है कुछ इतना विराट, इतना व्यापक
उसमें है सबके लिये जगह, सबका महत्व,
ओ मेज़ों की कोरों पर माथा रख रख कर रोने वाले
यह दर्द तुम्हारा नहीं सिर्फ़, यह सबका है।
सबने पाया है प्यार, सभी ने खोया है
सबका जीवन है भार, और सब जीते हैं,

बेचैन न हो—

यह दर्द अभी कुछ गहरे और उतरता है,

फिर एक ज्योति मिल जाती है,

जिसके मंजुल प्रकाश में सबके अर्थ नये खुलने लगते,

ये सभी तार बन जाते हैं

कोई अनजान अँगुलियाँ इन पर तैर तैर,

सब में संगीत जगा देती अपने-अपने

गुंथ जाते हैं ये सभी एक मीठी लय में

यह काम-काज, संघर्ष, विरस कड़वी बातें,

ये फूल, मोमबत्तियाँ और टूटे सपने।

यह दर्द विराट ज़िन्दगी में होगा परिणत

है तुम्हें निराशा फिर तुम पाओगे ताक़त

उन अंगुलियों के आगे कर दो माथा नत

जिनके छू लेने भर से फूल सितारे बन जाते हैं ये मन के छाले;

ओ मेज़ों की कोरों पर माथा रख रख कर रोने वाले—

हर एक दर्द को नये अर्थ तक जाने दो।

निवेदन

उनके प्रति जो मेरी कृतियों में मुझे ढूंढेंगे—

ये कविताएं,
यह कथा-कहानी उपन्यास,
इनके अन्दर तुम नाहक़ मुझको ढूंढ़ रहे !
ये गलियां थीं,
इनसे होकर मैं गुजर चुका,
यह केंचुल है, जो धीरे धीरे छूट रही !

'मैं' और 'कला'
इनकी कुछ भी अहमियत नहीं !
इन दोनों से ज्यादा विराट
कोई तीसरा सत्य है
जिसको आत्मसात् कर पाने को
मेरी आत्मा
धीरे धीरे
जीवन की यज्ञ-शिखाओं में पकती जाती

ओ मेरे बे जाने पहचाने दोस्त—
कौन जाने शायद
मुझसे पहले तुम पा जाओ वह
जिसको खोज रहा हूँ मैं।
तुम भी जाने या अनजाने
चल रहे वहीं।
दुख, दर्द और संघर्षों के माध्यम से जब
तुम भी उस सच्चाई की मंज़िल तक पहुँचो
जब एक विराट सत्य की छाया में
अभिषेक तुम्हारा हो
तब अपने चरणों पर बिखरे
क्षत-विक्षत पूजा फूलों में ढूंढ़ना मुझे
शायद तुम मुझको पा जाओ

नाहक़ तुम ढूंढ़ रहे मुझको
इन कथा-कहानी-उपन्यास-कविताओं में।

अनुक्रम

पृष्ठ

साहित्य-भवन लिमिटेड, इलाहाबाद द्वारा
प्रकाशित
श्री धर्मवीर भारती के गीतों, मुक्तवृत्तों
तथा मुक्तकों का पहला संग्रह
९६ पृष्ठ
3 रु०